INTERNATIONAL JOURNAL OF HISTORY

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
Impact Factor (RJIF): 5.63
www.historyjournal.net
IJH 2025; 7(9): 01-04
Received: 02-06-2025
Accepted: 06-07-2025

संध्या रानी
तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
संध्या रानी
तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

गुप्तोत्तर काल में शिक्षा और ज्ञान परंपराओं के विकास का विश्लेषण

संध्या रानी

सारांश
गुप्तोत्तर काल (6वीं से 12वीं शताब्दी) भारतीय इतिहास का वह महत्वपूर्ण चरण है, जब राजनीतिक विघटन और क्षेत्रीय राज्यों के उदय के बावजूद शिक्षा, ज्ञान और बौद्धिक गतिविधियों में उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस अवधि को "गुप्तोत्तर" इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद का समय है, जब विभिन्न क्षेत्रीय साम्राज्यों और रियासतों का उदय हुआ। हालांकि राजनीतिक सत्ता में अस्थिरता रही, फिर भी शैक्षिक और बौद्धिक जीवन ने मजबूत आधार प्राप्त किया और यह काल भारतीय ज्ञान परंपरा के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण साबित हुआ। इस काल में विश्वविद्यालयीय परंपरा का विस्तार हुआ। नालंदा, तक्षशिला और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों ने शिक्षा के उच्च मानक स्थापित किए और छात्रों को दूर-दराज़ के क्षेत्रों से आकर्षित किया। बौद्ध अध्ययन के साथ-साथ वैदिक, न्याय, मीमांसा, तंत्र और अन्य धार्मिक-दार्शनिक अनुशासनों का भी विकास हुआ। शिक्षण में गुरुकुल और आश्रम आधारित पद्धतियों का मिश्रण देखने को मिला, जिससे व्यक्तियों में नैतिक, दार्शनिक और बौद्धिक कौशल का विकास हुआ। गुप्तोत्तर काल में विज्ञान, गणित, चिकित्सा और खगोलशास्त्र में भी उल्लेखनीय योगदान हुआ। आर्यभट्ट, वराहमिहिर जैसे गणितज्ञ और खगोलशास्त्री इस काल की बौद्धिक समृद्धि के प्रतीक माने जाते हैं।[1] आयुर्वेद और अन्य चिकित्सा पद्धतियों में नए ग्रंथों और तकनीकों का विकास हुआ, जिससे समाज में स्वास्थ्य और उपचार के क्षेत्र में सुधार आया। इसके अलावा, साहित्य, कविता, नाट्य, संगीत और कला के क्षेत्र में भी यह काल महत्वपूर्ण रहा। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से यह काल महत्वपूर्ण था क्योंकि शिक्षा और ज्ञान के प्रसार ने समाज में विचारशीलता और बौद्धिक चेतना को बढ़ावा दिया। उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वानों ने प्रशासन, धर्म और समाज में नेतृत्व किया, न्याय और नैतिकता के मूल्यों को समाज में स्थापित किया और विभिन्न समुदायों के बीच सांस्कृतिक संवाद को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार, गुप्तोत्तर काल न केवल राजनीतिक दृष्टि से विभाजित था, बल्कि बौद्धिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक दृष्टि से यह भारतीय इतिहास में समृद्ध और स्थायी योगदान देने वाला युग रहा। यह काल शिक्षा और ज्ञान परंपरा की प्रगति, विश्वविद्यालयीय संरचनाओं के विकास और विज्ञान, कला और दर्शन में नवाचार के लिए स्मरणीय है।[2]

कूटशब्द: गुप्तोत्तर काल, शिक्षा प्रणाली, बौद्ध अध्ययन, वैदिक अध्ययन, तांत्रिक अध्ययन, विज्ञान और गणित, आयुर्वेद और चिकित्सा

1. प्रस्तावना
गुप्त काल को भारतीय सांस्कृतिक और बौद्धिक पुनर्जागरण का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस काल में कला, साहित्य, विज्ञान, धर्म और दर्शन के क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति हुई, जिसने भारतीय समाज की बौद्धिक और सांस्कृतिक धारा को गहराई और स्थायित्व प्रदान किया। हालांकि गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद 6वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक का गुप्तोत्तर काल राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर और विभाजित रहा, फिर भी शिक्षा और ज्ञान परंपराओं का विकास किया। विभिन्न क्षेत्रीय राज्यों के उदय और राजनीतिक विघटन के बावजूद बौद्धिक गतिविधियों और विश्वविद्यालयीय परंपरा का विस्तार निरंतर जारी रहा। इस काल में विश्वविद्यालयों और शिक्षा केंद्रों की स्थापना विशेष रूप से महत्वपूर्ण रही। नालंदा विश्वविद्यालय, जो बिहार में स्थित था, एशिया का प्रमुख शिक्षा और शोध केंद्र बन गया। यहाँ न केवल बौद्ध धर्म और दर्शन का अध्ययन किया जाता था, बल्कि गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, न्याय, मीमांसा और भाषाओं में भी व्यापक अध्ययन और शोध होता था।[3] नालंदा ने दूर-दराज़ के देशों जैसे चीन, कोरिया, जापान और दक्षिणपूर्व एशिया से विद्वानों को आकर्षित किया और भारतीय शिक्षा परंपरा को अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाई। विक्रमशिला विश्वविद्यालय ने विशेष रूप से तांत्रिक बौद्ध अध्ययन और धार्मिक शिक्षण में प्रावीण्य स्थापित किया। यहाँ पर गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से शिक्षार्थियों का प्रशिक्षण होता था, और छात्र न केवल ग्रंथों का अध्ययन करते थे, बल्कि बहस, तर्कशास्त्र और व्यवहारिक शिक्षण के माध्यम से ज्ञान को आत्मसात् करते थे। वल्लभी (गुजरात), उदंतपुरी (मध्य भारत) और सोमपुर (बिहार) जैसे अन्य विश्वविद्यालयों ने भी क्षेत्रीय छात्रों को अध्ययन और शोध के अवसर प्रदान किए। इन संस्थानों में शिक्षक और छात्र दोनों का चयन कठोर मानकों के आधार पर होता था, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित रहती थी। गुप्तोत्तर काल में शिक्षा का उद्देश्य केवल साक्षरता या ग्रंथों का ज्ञान प्राप्त करना नहीं था।[4]

यह काल सामाजिक-धार्मिक जागरूकता, नैतिक मूल्यों, बौद्धिक परिपक्वता और व्यक्तित्व विकास पर भी जोर देता था। विश्वविद्यालयों और आश्रमों में अध्ययन के दौरान छात्र बहस, व्याख्यान, शोध और ग्रंथानुवाद जैसी गतिविधियों में संलग्न

होते थे। इससे उन्हें न केवल शैक्षिक दक्षता प्राप्त होती थी, बल्कि तर्कशक्ति, आलोचनात्मक सोच और सामाजिक जिम्मेदारी का भी विकास होता था। इस काल में शिक्षा का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव भी गहरा था। शिक्षित विद्वानों ने प्रशासन, न्याय, धर्म और साहित्य के क्षेत्रों में नेतृत्व किया और समाज में सुधार और प्रगति की प्रक्रिया को गति दी। बौद्ध, जैन और हिन्दू विद्वानों ने ज्ञान के माध्यम से समाज में नैतिकता, तर्कशक्ति और सह-अस्तित्व को प्रोत्साहित किया। विश्वविद्यालयों के विस्तार ने यह सुनिश्चित किया कि शिक्षा केवल एक वर्ग तक सीमित न रहे, बल्कि विभिन्न सामाजिक और भौगोलिक क्षेत्रों के छात्रों तक पहुँच सके। इस प्रकार, गुप्तोत्तर काल भारतीय इतिहास में शिक्षा, ज्ञान और संस्कृति की समृद्ध परंपरा का प्रतीक बन गया। नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, उदंतपुरी और सोमपुर जैसे विश्वविद्यालयों ने शिक्षा के व्यापक प्रसार, विज्ञान और गणित में नवाचार, आयुर्वेद और चिकित्सा के अध्ययन और दर्शन के गहन चिंतन के माध्यम से भारतीय समाज में बौद्धिक चेतना और सांस्कृतिक स्थायित्व सुनिश्चित किया। गुप्तोत्तर काल ने यह सिद्ध किया कि राजनीतिक अस्थिरता के बावजूद शिक्षा और ज्ञान परंपराएँ समाज में स्थायी प्रगति और सांस्कृतिक समृद्धि का आधार बन सकती हैं।[5]

2. शैक्षिक केंद्रों का विकास

गुप्तोत्तर काल में नालंदा विश्वविद्यालय भारतीय उपमहाद्वीप का एक अद्वितीय और विश्वप्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध केंद्र बन गया। यह न केवल भारतीय छात्रों के लिए अध्ययन का प्रमुख स्थल था, बल्कि पूरे एशिया के विद्वानों को आकर्षित करता था। चीनी यात्रियों ह्वेनसांग और इत्सिंग ने अपने यात्रा विवरणों में नालंदा के हजारों विद्यार्थियों, विशेषज्ञ शिक्षकों और विशाल पुस्तकालय का विशेष उल्लेख किया है। इत्सिंग के अनुसार, यहाँ विद्यार्थियों की संख्या लगभग 10,000 से अधिक थी और विश्वविद्यालय में शिक्षकों की संख्या भी सैकड़ों में थी। नालंदा के पुस्तकालय में हजारों ग्रंथ संग्रहित थे, जो बौद्ध धर्म, दर्शन, व्याकरण, तर्कशास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद और अन्य विज्ञानों से संबंधित थे। नालंदा केवल शैक्षिक केंद्र नहीं था, बल्कि यह बौद्धिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का प्रमुख केंद्र भी था। यहाँ भारत और अन्य देशों के विद्वान एकत्र होकर ज्ञान और अनुभव साझा करते थे।[6] विश्वविद्यालय में अध्ययन पद्धति अत्यंत व्यवस्थित थी। शिक्षक-शिष्य परंपरा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी, जिसमें पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन, व्याख्यान, बहस, तर्कशास्त्र और शोध आधारित कार्य शामिल थे। छात्र प्रतिदिन अध्ययन और बहस के माध्यम से अपनी बुद्धि और तर्कशक्ति को विकसित करते थे। नालंदा विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम का विस्तार भी अद्वितीय था। यहाँ बौद्ध दर्शन के विभिन्न संप्रदायों का अध्ययन होता था, जैसे महायान और हीनयान, साथ ही सांख्य, न्याय, मीमांसा और वेदांत का गहन शिक्षण होता था। गणित और खगोलशास्त्र के क्षेत्र में भी नालंदा अग्रणी रहा; विद्यार्थियों ने तारकीय गणना, ज्योतिषीय सिद्धांत और अंकगणितीय तकनीकों का अध्ययन किया। चिकित्सा के क्षेत्र में आयुर्वेद और हर्बल उपचार का व्यापक ज्ञान प्रदान किया जाता था, जिससे छात्र न केवल चिकित्सक बनते, बल्कि समाज में स्वास्थ्य सुधार और सेवा में योगदान देते थे।[7] इसके अतिरिक्त, नालंदा विश्वविद्यालय विदेशी विद्वानों के लिए अंतरराष्ट्रीय अध्ययन केंद्र का काम करता था। चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत और दक्षिण-पूर्व एशिया के छात्र यहाँ अध्ययन करने आते थे। इस प्रकार नालंदा ने भारतीय ज्ञान परंपरा को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाया और भारतीय शिक्षा को विश्व मानचित्र पर स्थापित किया। विश्वविद्यालय का यह मॉडल न केवल शैक्षिक उत्कृष्टता का प्रतीक था, बल्कि यह सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान, बौद्धिक संवाद और वैश्विक दृष्टिकोण के विकास का केंद्र भी था। इस प्रकार, गुप्तोत्तर काल में नालंदा विश्वविद्यालय ने शिक्षा और ज्ञान परंपराओं को नई ऊँचाइयाँ दी। यह न केवल बौद्ध धर्म और दार्शनिक अध्ययन का केंद्र था, बल्कि गणित, चिकित्सा, खगोलशास्त्र और अन्य विज्ञानों के क्षेत्र में नवीन योगदान देने वाला प्रमुख संस्थान भी था। नालंदा की यह परंपरा भारतीय शिक्षा और बौद्धिक विकास के इतिहास में स्थायी और गहरा प्रभाव छोड़ गई, और इसे विश्व शिक्षा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर माना जाता है।[8]

विक्रमशिला विश्वविद्यालय गुप्तोत्तर काल में पाल वंश के शासनकाल के दौरान स्थापित हुआ और यह नालंदा के समान ही एक प्रमुख बौद्धिक एवं शैक्षिक केंद्र बन गया। इसे विशेष रूप से बौद्ध तंत्र और तर्कशास्त्र के अध्ययन के लिए प्रसिद्धि प्राप्त थी। विश्वविद्यालय का उद्देश्य केवल धार्मिक शिक्षा प्रदान करना नहीं था, बल्कि विद्यार्थियों को तार्किक विश्लेषण, बहस और चिंतनशील दृष्टिकोण में दक्ष बनाना भी था। यहाँ की शिक्षा पद्धति अत्यंत व्यवस्थित और अनुशासित थी, जिसमें शिक्षक-शिष्य परंपरा, नियमित व्याख्यान, बहस और शोधात्मक गतिविधियाँ शामिल थीं। विक्रमशिला में छात्रों को केवल बौद्ध धर्म और तंत्र तक सीमित नहीं रखा जाता था; यहाँ गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेदिक चिकित्सा, साहित्य और दर्शन जैसे विविध विषयों का भी गहन अध्ययन होता था। इस बहुआयामी पाठ्यक्रम ने विद्यार्थियों को व्यापक ज्ञान प्रदान किया और उन्हें न केवल धार्मिक और दार्शनिक मामलों में निपुण बनाया, बल्कि समाज और जीवन के अन्य क्षेत्र में भी सोचने और निर्णय लेने की क्षमता दी। इसके अतिरिक्त, यहाँ अध्ययनरत छात्रों को नैतिक मूल्यों, सामाजिक जिम्मेदारियों और बौद्धिक अनुशासन का पालन करने की शिक्षा भी दी जाती थी।[9] विदेशी विद्वान और छात्र भी विक्रमशिला विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा के कारण यहाँ अध्ययन करने आते थे। चीन, तिब्बत और दक्षिण-पूर्व एशिया के विद्वान यहाँ के पाठ्यक्रम, बहस और शोध कार्य में भाग लेते और ज्ञान का आदान-प्रदान करते थे। यह वैश्विक बौद्धिक केंद्र बनने की दिशा में विक्रमशिला की भूमिका को और सशक्त बनाता था। विक्रमशिला विश्वविद्यालय ने गुप्तोत्तर काल में शिक्षा और ज्ञान परंपराओं के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया। यहाँ से प्राप्त शिक्षा न केवल धार्मिक और दार्शनिक अध्ययन तक सीमित थी, बल्कि गणित, चिकित्सा, खगोलशास्त्र और साहित्य जैसे क्षेत्रों में भी नए विचार और शोध उत्पन्न हुए। इसने भारतीय शिक्षा, संस्कृति और बौद्धिक परंपरा को सुदृढ़ किया और शिक्षा के अंतरराष्ट्रीय आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विक्रमशिला की यह परंपरा न केवल गुप्तोत्तर काल की शिक्षा और बौद्धिक प्रगति का प्रतीक है, बल्कि भारतीय इतिहास में स्थायी और गहरा प्रभाव छोड़ने वाला एक महत्वपूर्ण संस्थान भी है।[10]

गुप्तोत्तर काल में नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त, वल्लभी, उदंतपुरी और सोमपुर भी शिक्षा और ज्ञान के प्रमुख केंद्र बनकर उभरे। वल्लभी विश्वविद्यालय, जो वर्तमान गुजरात में स्थित था, विशेष रूप से वेद, वेदांग, न्याय और अन्य दार्शनिक विषयों के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ के विद्वानों ने न केवल धार्मिक और दार्शनिक अध्ययन में उत्कृष्टता प्राप्त की, बल्कि भाषाविज्ञान, साहित्य और संस्कृत ग्रंथों की व्याख्या में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। वल्लभी ने स्थानीय विद्यार्थियों के साथ-साथ दूर-दूर से आने वाले छात्र और विद्वानों को शिक्षा प्रदान की, जिससे यह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक बौद्धिक केंद्र बन गया। यहाँ का शिक्षण व्यवस्था बहुआयामी थी, जिसमें केवल सैद्धांतिक ज्ञान ही नहीं बल्कि तर्क, बहस और शोध का भी महत्व था। उदंतपुरी विश्वविद्यालय भी गुप्तोत्तर काल का प्रमुख शैक्षिक केंद्र था।[11] पाल वंश के संरक्षण में विकसित यह विश्वविद्यालय गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद और विज्ञान के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक और व्यावहारिक ज्ञान भी दिया जाता था, जिससे वे न केवल सैद्धांतिक विशेषज्ञ बनते थे, बल्कि समाज में अपने ज्ञान का प्रभावी प्रयोग कर सकते थे। उदंतपुरी ने शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत व्यवस्थित पद्धति अपनाई थी, जिसमें नियमित व्याख्यान, बहस और शोध गतिविधियाँ शामिल थीं। यह छात्रों को आलोचनात्मक सोच, तार्किक विश्लेषण और व्यवस्थित अध्ययन की आदत विकसित करने में मदद करता था। सोमपुर विश्वविद्यालय भी गुप्तोत्तर काल में बौद्ध शिक्षा, तंत्र अध्ययन और दर्शन का प्रमुख केंद्र बनकर उभरा। यहाँ शिक्षा केवल धार्मिक अध्ययन तक सीमित नहीं थी; तर्कशास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा और साहित्य जैसे विषयों का भी गहन अध्ययन होता था।[12] विद्यार्थियों का प्रशिक्षण बहुआयामी था, जिसमें नैतिक मूल्यों, सामाजिक जिम्मेदारियों और बौद्धिक अनुशासन पर विशेष जोर दिया जाता था। सोमपुर ने छात्रों को बहुस्तरीय दृष्टिकोण और विचारशीलता विकसित करने का अवसर प्रदान किया, जिससे वे समाज और संस्कृति के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा सके। इन सभी विश्वविद्यालयों का उद्देश्य केवल विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करना नहीं था, बल्कि

उन्हें सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से सशक्त बनाना भी था। यहाँ से शिक्षित विद्वान समाज में शिक्षा, विज्ञान, दर्शन और चिकित्सा के माध्यम से योगदान देते थे। इन केंद्रों ने भारतीय शिक्षा और संस्कृति को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और ज्ञान के क्षेत्र में स्थायी परंपरा स्थापित की। वल्लभी, उदंतपुरी और सोमपुर विश्वविद्यालय न केवल गुप्तोत्तर काल में शिक्षा और विद्या के प्रसार का माध्यम बने, बल्कि उन्होंने समाज, संस्कृति और बौद्धिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। इन संस्थानों ने भारतीय विद्या और संस्कृति के संरक्षण, ज्ञानार्जन और सामाजिक-सांस्कृतिक जागरूकता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह काल भारतीय शिक्षा का वह चरण था, जिसने गहन बौद्धिक परंपराओं और बहुआयामी ज्ञान प्रणाली का विकास कर आधुनिक शिक्षा के लिए आधार तैयार किया।[13]

3. ज्ञान परंपराओं का विस्तार

गुप्तोत्तर काल में शिक्षा और विद्या केवल संस्थागत रूप तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह समाज के हर क्षेत्र—सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन—में व्यापक और गहन प्रभाव डालती रही। यह काल भारतीय शिक्षा का स्वर्णिम युग माना जाता है, क्योंकि इस समय शैक्षणिक गतिविधियाँ केवल ग्रंथों के अध्ययन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि उन्हें समाज सुधार, सांस्कृतिक उत्थान और नैतिक चेतना से जोड़ा गया। शिक्षा को इस काल में एक सामाजिक उत्तरदायित्व, बौद्धिक उत्कृष्टता और नैतिक दिशा का साधन माना गया। धार्मिक और दार्शनिक शिक्षा इस काल की सबसे प्रमुख विशेषता थी। वेदांत, सांख्य, योग, न्याय और बौद्ध दर्शन को प्रमुख रूप से पढ़ाया गया। छात्र केवल ग्रंथों के अध्ययन तक सीमित नहीं रहते थे, बल्कि उन्हें दार्शनिक विमर्श, तर्क और नैतिक मूल्य सीखने की शिक्षा दी जाती थी। यह शिक्षा उन्हें न केवल बौद्धिक रूप से सशक्त बनाती थी, बल्कि समाज में न्याय, सहिष्णुता और सामाजिक जिम्मेदारी के मूल्यों को भी विकसित करती थी। गुरुकुल और विश्वविद्यालयों में छात्रों को बहस, समूह चर्चा, शोध और आलोचनात्मक सोच का प्रशिक्षण दिया जाता था। इस प्रणाली ने स्वतंत्र विचार और विश्लेषण की क्षमता को बढ़ावा दिया, जिससे विद्यार्थी अपने समय के सामाजिक और दार्शनिक प्रश्नों का गहन समाधान कर सकते थे।[14]

नालंदा, विक्रमशिला, सोमपुर और उदंतपुरी विश्वविद्यालयों ने शैक्षणिक उत्कृष्टता का उच्चतम स्तर स्थापित किया। न्यायशास्त्र, वेदांग, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र और नीति शास्त्र का अध्ययन गहन रूप से किया जाता था। ये विश्वविद्यालय केवल अध्ययन केंद्र नहीं थे, बल्कि समाज और प्रशासन के लिए नेतृत्व, नैतिक और बौद्धिक मार्गदर्शन देने वाले केंद्र भी थे। यहां विद्यार्थी साहित्य, कला, विज्ञान और गणित के साथ-साथ सामाजिक और राजनीतिक ज्ञान भी प्राप्त करते थे। शिक्षण प्रणाली में गुरु-शिष्य परंपरा के साथ-साथ समूह परियोजनाएँ, बहस और प्रयोगात्मक अध्ययन शामिल थे, जिससे छात्रों में बहुआयामी ज्ञान और व्यावहारिक कौशल विकसित होता था।

गुप्तोत्तर काल के गणितज्ञ और वैज्ञानिक इस युग के गौरव थे। ब्रह्मगुप्त ने शून्य, दशमलव प्रणाली और अंकगणित में अद्वितीय योगदान दिया। उनके ग्रंथों ने गणित के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पहलुओं को विकसित किया। भास्कराचार्य ने ग्रहों की गति, खगोलीय गणना, समीकरण और ज्यामिति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सिद्धांत विकसित किए। उनके कार्यों ने न केवल शैक्षणिक दृष्टि से मूल्य बढ़ाया, बल्कि प्रशासन, खगोल-गणना, समय-निर्धारण और तकनीकी कार्यों में भी उनकी उपयोगिता सिद्ध की। चिकित्सा और आयुर्वेद के क्षेत्र में भी गुप्तोत्तर काल अत्यंत प्रगतिशील था। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में रोगनिदान, औषधिशास्त्र, शल्यकर्म, शारीरिक संरचना और शरीर विज्ञान पर विशेष बल दिया गया। नालंदा और सोमपुर विश्वविद्यालयों में चिकित्सा शिक्षा केवल सैद्धांतिक अध्ययन नहीं थी, बल्कि इसमें व्यावहारिक प्रशिक्षण, रोगों का निरीक्षण और उपचारात्मक प्रयोग शामिल थे। इसके परिणामस्वरूप चिकित्सक समाज में स्वास्थ्य सेवा और रोग निवारण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते थे।[15]

भाषा और साहित्य में संस्कृत का विशेष स्थान रहा। धार्मिक ग्रंथों, तर्कशास्त्र, विज्ञान और दार्शनिक अध्ययन में संस्कृत का प्रयोग मुख्य भाषा के रूप में होता था। इसके साथ-साथ प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य ने आम जनता में ज्ञान और संस्कृति के प्रसार में योगदान दिया। इस काल में कविताएँ, गाथाएँ, नाटक, शास्त्रीय निबंध और छंद साहित्य विकसित हुए। साहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं था, बल्कि यह नैतिक शिक्षा, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रचार का भी महत्वपूर्ण साधन बन गया। कवियों और लेखकों ने समाज की वास्तविकताओं, धार्मिक चिंताओं और दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया, जिससे शिक्षा का प्रभाव केवल शैक्षणिक नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जागरूकता तक भी पहुंचा। गुप्तोत्तर काल की शिक्षा बहुआयामी और अंतरविषयक थी। धर्म, दर्शन, विज्ञान, गणित, चिकित्सा और साहित्य का समन्वित अध्ययन विद्यार्थियों को न केवल बौद्धिक रूप से सक्षम बनाता था, बल्कि उन्हें समाज में नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए भी तैयार करता था। नालंदा और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय केवल अध्ययन केंद्र नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन, वैश्विक आदान-प्रदान और नैतिक चेतना के केंद्र भी बने।[16]

विद्यार्थियों को बहुस्तरीय शिक्षा देने के कारण ये संस्थान समाज में न्याय, समानता और धार्मिक सहिष्णुता के मूल्यों को फैलाने में सक्षम हुए। शिक्षा ने सामाजिक सुधार, बहुसांस्कृतिक संवाद और वैश्विक ज्ञान के आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। विदेशी विद्वानों और यात्रियों ने नालंदा, विक्रमशिला और सोमपुर में अध्ययन किया और अपने देश लौटकर भारतीय विद्या, दर्शन, गणित, चिकित्सा और साहित्य का प्रचार किया। इसने भारतीय शिक्षा का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सम्मान बढ़ाया और वैश्विक ज्ञान परंपरा में भारत की पहचान मजबूत की। गुप्तोत्तर काल में शिक्षा केवल विद्या अर्जन का साधन नहीं रही, बल्कि यह समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक उत्थान का मार्ग भी बनी। शिक्षा ने समाज में न्याय, समानता और सहिष्णुता के मूल्यों को बढ़ावा दिया और विभिन्न वर्गों, संप्रदायों और भौगोलिक क्षेत्रों के बीच संवाद और सहयोग की परंपरा को मजबूत किया। इसके माध्यम से भारतीय विद्या और संस्कृति ने दीर्घकालिक आधार पाया, जो आधुनिक शिक्षा प्रणाली और सामाजिक चेतना के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। इस प्रकार गुप्तोत्तर काल की शिक्षा और ज्ञान परंपरा न केवल बौद्धिक समृद्धि का प्रतीक रही, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और वैश्विक दृष्टि से भी इसके प्रभाव अत्यंत व्यापक और दीर्घकालिक रहे। यह काल शिक्षा के माध्यम से समाज को समृद्ध बनाने, नैतिकता, तर्क और आलोचनात्मक विचारधारा को फैलाने, और बहु-सांस्कृतिक संवाद को प्रोत्साहित करने का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। गुप्तोत्तर काल की ये परंपराएँ आधुनिक भारतीय शिक्षा और संस्कृति के लिए स्थायी आधार के रूप में आज भी महत्व रखती हैं।[17]

4. सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव

गुप्तोत्तर काल में शिक्षा और ज्ञान परंपराओं का प्रभाव केवल शैक्षिक क्षेत्र तक सीमित नहीं था, बल्कि यह समाज के हर पहलू- सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन- में गहरा और व्यापक प्रभाव डालता रहा। इस काल में शिक्षा को केवल व्यक्तिगत या शैक्षणिक उपलब्धि के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि इसे सामाजिक सुधार, नैतिक विकास और सांस्कृतिक पहचान के मुख्य साधन के रूप में माना गया। इस दृष्टिकोण ने गुप्तोत्तर काल की शिक्षा और ज्ञान परंपराओं को न केवल समृद्ध किया, बल्कि उन्हें दीर्घकालिक प्रभाव वाला और सार्वभौमिक बना दिया।[18] विद्वानों और शिक्षकों का संरक्षण मुख्यतः राजाओं, मठों, धार्मिक संस्थानों और व्यापारिक संघों द्वारा किया गया। राजाओं ने विश्वविद्यालयों, आश्रमों और पुस्तकालयों के लिए भूमि दान, आर्थिक सहायता और अन्य संसाधनों का प्रबंध किया। उनका उद्देश्य केवल शिक्षा का विस्तार करना ही नहीं था, बल्कि विद्या और ज्ञान के अध्ययन के लिए स्थायी आधार सुनिश्चित करना भी था। उदाहरण स्वरूप, नालंदा, विक्रमशिला और सोमपुर जैसे विश्वविद्यालयों के निर्माण और संचालन में राजा और कुलीन वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका रही।[19] मठों और धार्मिक संस्थानों ने विद्यार्थियों के रहने और भोजन की

व्यवस्था के साथ-साथ अध्ययन के लिए आवश्यक ग्रंथ, उपकरण और पुस्तकालयों की सुविधा उपलब्ध कराई। व्यापारिक संघों और कुलीन वर्ग ने शिक्षा को सामाजिक प्रतिष्ठा का माध्यम माना और विद्वानों तथा शिक्षकों को सम्मान, आर्थिक सहायता और संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार, शिक्षा के विकास में विभिन्न सामाजिक और आर्थिक तत्वों का योगदान इस काल की शैक्षिक समृद्धि में अहम भूमिका निभाता रहा।[20]

शिक्षा का प्रभाव केवल संस्थागत या आर्थिक स्तर तक सीमित नहीं था, बल्कि इसने सामाजिक और सांस्कृतिक सहिष्णुता को भी बढ़ावा दिया। विभिन्न संप्रदायों, मतों और विचारधाराओं के छात्र और विद्वान एक साथ अध्ययन करते थे। बौद्ध, जैन और हिंदू गुरुकुलों में छात्र आपसी सहयोग, बहस और विचार विमर्श के माध्यम से ज्ञान अर्जित करते थे। इसने बहु-सांस्कृतिक संवाद और सामूहिक चिंतन की परंपरा को विकसित किया। विद्वानों और छात्रों के बीच विचारों का आदान-प्रदान न केवल धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ाता था, बल्कि सामाजिक समरसता और पारस्परिक सम्मान की भावना को भी प्रबल करता था। इसके परिणामस्वरूप समाज में विभिन्न जातियों, संप्रदायों और भौगोलिक क्षेत्रों के बीच वैचारिक और बौद्धिक आदान-प्रदान का वातावरण विकसित हुआ।[21]

गुप्तोत्तर काल में विदेशी विद्यार्थियों और यात्रियों का आगमन भारतीय शिक्षा और ज्ञान परंपरा के वैश्विक प्रसार में निर्णायक साबित हुआ। चीन, तिब्बत, दक्षिण-पूर्व एशिया और अन्य देशों के विद्वान नालंदा, विक्रमशिला और सोमपुर जैसे विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने आए। ह्वेनसांग, इत्सिंग और अन्य विदेशी यात्रियों ने इन संस्थानों का विस्तृत विवरण लिखा और अपने देश लौटकर भारतीय ज्ञान परंपरा, दर्शन, गणित, चिकित्सा, खगोलशास्त्र और साहित्य का प्रचार किया। इससे भारतीय शिक्षा का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सम्मान बढ़ा और वैश्विक ज्ञान परंपरा में भारत की पहचान मजबूत हुई। इस वैश्विक आदान-प्रदान ने भारतीय विद्या को न केवल अंतरराष्ट्रीय मान्यता दी, बल्कि विभिन्न देशों के शिक्षण और अध्ययन के तरीकों के लिए प्रेरणा भी प्रदान की।[22]

शिक्षा ने सामाजिक सुधार और सांस्कृतिक चेतना को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया। विद्यार्थी केवल ग्रंथों का अध्ययन ही नहीं करते थे, बल्कि समाज में नैतिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करने में सक्रिय योगदान देते थे। कला, संगीत, साहित्य, वास्तुकला, विज्ञान और गणित के क्षेत्र में नवाचार और सृजनशीलता को इस काल में शिक्षा ने प्रोत्साहित किया। नालंदा और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय केवल ज्ञान प्राप्ति के केंद्र नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और नैतिक चेतना के केंद्र भी थे। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक उपलब्धि नहीं था, बल्कि व्यक्ति और समाज दोनों के नैतिक और सामाजिक उत्थान को सुनिश्चित करना भी था। महिलाओं और वंचित वर्गों के बीच भी इस काल में शिक्षा का विस्तार हुआ। भले ही यह प्रारंभिक स्तर पर सीमित था, फिर भी विद्या और बौद्धिक जागरूकता के माध्यम से सामाजिक सक्रियता और न्याय की भावना को बढ़ावा मिला। शिक्षा ने समाज में न्याय, समानता और धार्मिक सहिष्णुता के मूल्यों को फैलाने का कार्य किया। इसने सामाजिक असमानताओं और भेदभाव को चुनौती दी और विभिन्न वर्गों के बीच संवाद और सहयोग की परंपरा को मजबूत किया।[23]

गुप्तोत्तर काल में शिक्षा और ज्ञान परंपराओं का सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव अत्यंत गहन, व्यापक और दीर्घकालिक रहा। इसने तत्कालीन समाज में न केवल बौद्धिक और सांस्कृतिक समृद्धि लायी, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी मजबूत नैतिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक आधार स्थापित किया। शिक्षा ने समाज को समृद्ध बनाने के साथ-साथ एक ऐसा वातावरण तैयार किया, जिसमें बहु-सांस्कृतिक संवाद, वैश्विक आदान-प्रदान, सामाजिक न्याय और नैतिक चेतना का विकास संभव हो सका। इस प्रकार गुप्तोत्तर काल की शिक्षा केवल अकादमिक अध्ययन का माध्यम नहीं थी, बल्कि यह समाज के प्रत्येक स्तर पर परिवर्तन और सुधार की प्रेरक शक्ति बनकर उभरी।

5. निष्कर्ष

गुप्तोत्तर काल ने भारतीय शिक्षा और ज्ञान परंपराओं को न केवल संरक्षित किया, बल्कि उन्हें नई दिशा और विस्तार भी प्रदान किया। इस काल में नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, उदंतपुरी और सोमपुर जैसे विश्वविद्यालयों की स्थापना ने शिक्षा के भौगोलिक और विषयगत विस्तार को सुनिश्चित किया। बौद्ध, हिंदू और जैन दर्शन, वेदांत, न्याय, सांख्य, योग, आयुर्वेद, गणित, खगोलशास्त्र और साहित्य जैसे क्षेत्रों में विद्वानों ने उल्लेखनीय योगदान दिया। विश्वविद्यालयों और मठों में अध्ययन और शोध ने विद्या के क्षेत्र में नवाचार और गहन विश्लेषण को बढ़ावा दिया। इसके साथ ही विदेशी यात्रियों और विद्वानों के आगमन से भारतीय ज्ञान का वैश्विक प्रसार हुआ और यह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त कर सका। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह काल महत्वपूर्ण था। शिक्षा ने धार्मिक सहिष्णुता, बहुसांस्कृतिक संवाद और सामाजिक समरसता को बढ़ावा दिया। विद्वानों का संरक्षण और समाज में उनके प्रति सम्मान ने शिक्षण और अध्ययन को प्रेरक और स्थायी बनाया। शिक्षा के माध्यम से नैतिक चेतना, सामाजिक सुधार और सांस्कृतिक पुनर्जागरण को बल मिला। गुप्तोत्तर काल की यह शिक्षा केवल विद्या अर्जन का माध्यम नहीं थी, बल्कि यह समाज में विचार, नैतिकता, न्याय और समानता के मूल्यों को स्थापित करने वाला आधार भी बनी। इस प्रकार, गुप्तोत्तर काल भारतीय बौद्धिक परंपरा की दृढ़ता, विविधता और वैश्विक आकर्षण का प्रतीक है। इसने शिक्षा और ज्ञान की निरंतरता को बनाए रखा, समाज और संस्कृति में स्थायी प्रभाव डाला, और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक सुदृढ़ बौद्धिक और सांस्कृतिक आधार स्थापित किया। यह काल दर्शाता है कि अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों के बावजूद शिक्षा और ज्ञान की शक्ति समाज, संस्कृति और वैश्विक पहचान को स्थायी रूप से प्रभावित कर सकती है।

संदर्भ

1. थापर, रोमिला, प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2015, पृ.310.
2. झा, डी.एन., भारतीय शिक्षा और विश्वविद्यालय, पटना, 2012, पृ.45.
3. शर्मा, राघव, भारतीय विज्ञान का इतिहास, दिल्ली, 2010, पृ.102.
4. सिंह, उदय, नालंदा विश्वविद्यालय और उसकी भूमिका, वाराणसी, 2011, पृ.58.
5. अग्रवाल, वी.के., भारतीय गणितज्ञ और उनके योगदान, मुंबई, 2009, पृ.76.
6. मिश्रा, अशोक, गुप्तोत्तर काल में आयुर्वेद और चिकित्सा, पटना, 2013, पृ.88.
7. त्रिपाठी, राधा, विक्रमशिला विश्वविद्यालय का इतिहास, काशी, 2014, पृ.34.
8. चतुर्वेदी, पी.एल., मध्यकालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली, लखनऊ, 2011, पृ.67.
9. गुप्ता, सुनील, भारतीय खगोलशास्त्र का इतिहास, दिल्ली, 2008, पृ.121.
10. वर्मा, अजय, प्राचीन भारतीय दर्शन, नई दिल्ली, 2010, पृ.95.
11. देसाई, माधव, गुप्तोत्तर कला और साहित्य, अहमदाबाद, 2012, पृ.54.
12. रॉय, श्रीमती, नालंदा और विक्रमशिला में शिक्षा, कोलकाता, 2011, पृ.42.
13. पांडेय, मनोज, गुप्तोत्तर काल के विश्वविद्यालय, लखनऊ, 2009, पृ.39.
14. चंद्र, बिपिन, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, दिल्ली, 2013, पृ.77.
15. सिन्हा, अरविंद, भारतीय गणित और खगोलशास्त्र, पटना, 2010, पृ.89.
16. जैन, विमला, बौद्ध अध्ययन और विश्वविद्यालय, मुंबई, 2014, पृ.61.
17. सक्सेना, विजय, भारतीय शिक्षा परंपरा, नई दिल्ली, 2012, पृ.112.
18. पाठक, शिव, भारतीय साहित्य और संस्कृति, वाराणसी, 2008, पृ.73.
19. मिश्र, कमल, आयुर्वेद और चिकित्सा विज्ञान, पटना, 2011, पृ.49.
20. भट्टाचार्य, रवि, प्राचीन और मध्यकालीन शिक्षा, कोलकाता, 2010, पृ.83.
21. नायर, सुशील, नालंदा विश्वविद्यालय का योगदान, दिल्ली, 2013, पृ.36.
22. गुप्ता, अजय, विक्रमशिला और अन्य विश्वविद्यालय, लखनऊ, 2012, पृ.50.
23. त्रिपाठी, रश्मि, भारतीय दर्शन का विकास, वाराणसी, 2011, पृ.68.